SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

सूर्यबाला की कहानियों में निहित लोक–जीवन में जीवन–मूल्य

कुमुदिनी घृतलहरे, (Ph.D.), साहित्य एवं भाषा अध्ययनशाला,
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
कुमुदिनी घृतलहरे, (Ph.D.),
साहित्य एवं भाषा अध्ययनशाला,
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय,
रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 11/02/2022
Revised on : -----
Accepted on : 18/02/2022
Plagiarism : 01% on 11/02/2022

Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 1%

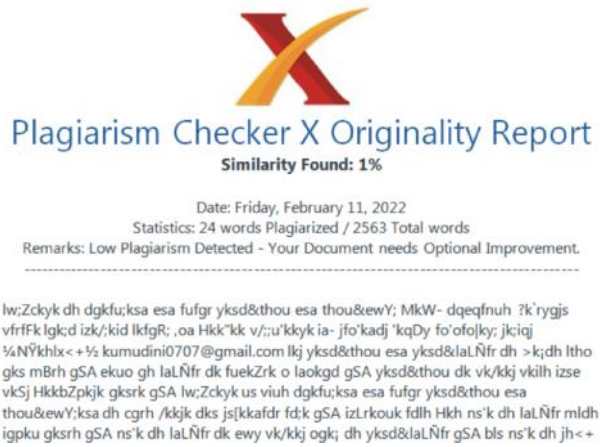

Date: Friday, February 11, 2022
Statistics: 24 words Plagiarized / 2563 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

lw;Zckyk dh dgkfu;ksa esa fufgr yksd&thou esa thou&ewY; MkW- dqeqfnuh ?k`rygjs vfrfFk lgk;d izk/;kid lkfgR; ,oa Hkk"kk v/;;u'kkyk ia- jfo'kadj 'kqDy fo'ofo|ky; jk;iqj ¼NŸkhlx< + ½ kumudini0707@gmail.com lkj yksd&thou esa yksd&laLÑfr dh >k;dh litho gks mBrh gSA ekuo gh laLÑfr dk fuekZrk o laokgd gSA yksd&thou dk vk/kkj vkilh izse vkSj HkkbZpkjk gksrk gSA lw;Zckyk us viuh dgkfu;ksa esa fufgr yksd&thou esa thou&ewY;ksa dh cgrh /kkjk dks js[kkafdr fd;k gSA izLrkouk fdlh Hkh ns'k dh laLÑfr mldh igpku gksrh gSA ns'k dh laLÑfr dk ewy vk/kkj ogk¡ dh yksd&laLÑfr gSA bls ns'k dh jh< +

शोध सार

लोक–जीवन में लोक–संस्कृति की झाँकी सजीव हो उठती है। मानव ही संस्कृति का निर्माता व संवाहक है। लोक–जीवन का आधार आपसी प्रेम और भाईचारा होता है। सूर्यबाला ने अपनी कहानियों में निहित लोक–जीवन में जीवन–मूल्यों की बहती धारा को रेखांकित किया है।

मुख्य शब्द

सूर्यबाला, जीवन, मूल्य, संस्कृति.

प्रस्तावना

किसी भी देश की संस्कृति उसकी पहचान होती है। देश की संस्कृति का मूल आधार वहाँ की लोक–संस्कृति है। इसे देश की रीढ़ कहा जा सकता है, क्योंकि किसी देश की सही तस्वीर वहाँ की लोक–संस्कृति से ही पता चलती है। जीवन जीने का तरीका संस्कृति है। रहन–सहन, आचार–विचार, रीति–रिवाज, परंपरा, वेश–भूषा, कला, बोली आदि संस्कृति है। इसकी पहचान अंचल की भौगोलिक स्थिति से भी होती है। अनेकता में एकता की विशेषता वाले भारतवर्ष में सांस्कृतिक विविधता एवं लोक–जीवन का सौंदर्य समाहित है।

संस्कृति से मानव का अस्तित्व है। वह समाज में रह कर इसे सीखता है, अपनाता है। पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होने वाली संस्कृति का निर्माता व संवाहक मनुष्य है।

लोक–संस्कृति में ग्रामीण–संस्कृति का बोध होता है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसारः ''लोक–संस्कृति अपने शुद्ध रूप में गाँवों में विराजती है। नगर में उसका विद्रूप ही देखा जा सकता है।''[1] 'लोक्' धातु से 'लोक' शब्द बना है, जिसका अर्थ है देखना, प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना। अंग्रेजी में 'फोक' (FOLK) कहा जाता है। 'लोक' का

अर्थ व्यापक है, यह सृष्टि के भीतर से बाहर तक फैली हुई है। अतः लोक का अर्थ वह सामान्य जन है जो श्रमरत् हैं, जिनके परिश्रम से संसार गतिमान है। यह जीवन के भूत, वर्तमान व भविष्य का दर्पण है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत हैः ''लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिसके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है।''[2] लोक का अर्थ है सब जगह, सामान्य–जीवन।

लोक–जीवन में ही रीति–रिवाज, परंपरा जीवित है। बोली की मिठास, नृत्य–गीत मन में उल्लास भर देता है। लोक–जीवन की अभिव्यक्ति लोक–साहित्य, लोक–गीत लोक–नाट्य में होती है। लोक–लाज, मान–मर्यादा की डोर से बँधा लोक–जीवन, अपने तीज–त्यौहार, उत्सव, प्रेम और सौहार्द्रपूर्वक मनाकर सुकून प्राप्त करता है। ''संस्कृति आखिर मूल्यों और निष्ठाओं की मंजूषा ही तो है, जिनके सहारे समाज पोषित होता रहता है।''[3] आदर्श जीवन–यापन के लिए समाज द्वारा कुछ मानदण्ड तय किए गए हैं, इन मानदण्डों का पालन करना ही जीवन–मूल्य है।

बढ़ती आधुनिकता व बाज़ारवाद ने लोक–जीवन एवं मूल्यों को भी प्रभावित किया है। शहरों में उपेक्षित हो चुकी लोक–संकृति अब ग्राम्य अंचल में भी धीरे–धीरे साँसें तोड़ रही है। शहरी जीवन के प्रति आकर्षण ने यह स्थिति पैदा की है। विवाह, जन्म, पूजा में लोकगीतों का स्थान अब फिल्मी धुनों से सजी गीतों ने ले लिया है। इससे लोक–संस्कृति विकृत हो रही है। घटते मूल्यों के कारण रिश्तों से आत्मीयता खोती जा रही है। साहित्यकार समाज की ऐसी स्थिति पर चिंता व्यक्त करता है। साहित्य, विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। अतः किसी भी सभ्यता व संस्कृति को समझने का उचित माध्यम साहित्य है।

सूर्यबाला

सूर्यबाला की कहानियाँ अनुभव की धरातल से उपजी हैं। इनमें महानगर, शहर, कस्बा और गाँव के परिवेश का चित्रण है। सूर्यबाला की कहानियों में क्षेत्रीय बोलियों, रीति–रिवाजों, संस्कारों की सोंधी महक से लोक–जीवन जीवंत हो उठा है। सूर्यबाला के भाषा प्रयोग पर हरदयाल के विचार– ''सूर्यबाला की सूक्ष्म निरीक्षण क्षमता भाषिक स्तर पर भी हम अनुभव करते हैं। जो पात्र जिस क्षेत्र और पृष्ठभूमि से आया है, वह उसी क्षेत्र और पृष्ठभूमि की भाषा को अपने व्यवहार, विशेष रूप से अपनी बातचीत में उपयोग लाता है।... आंचलिक बोली का सुखद पुट होता है।''[4] जीवन में संस्कारों, मूल्यों की विशेष हिमायती सूर्यबाला की कहानियों के पात्र इन मूल्यों को टूटते देख छटपटा उठते हैं एवं उन्हें संरक्षित रखने का भरसक प्रयत्न करते हैं। लोक–जीवन के विशेष गुण रिश्तों में विश्वास, आत्मीयता, रीति–रिवाज, लोकगीत आदि इनकी कहानियों में सहजता व स्वाभाविकता लाते हैं। आधुनिकीकरण के कारण संवेदनाएँ सूखती जा रही हैं। इसकी चपेट में मासूम ग्रामीण भी आ रहे हैं। समाज में पसर चुकी संवेदनहीनता रचनाकार को परेशान करती हैं। उनका विचार है– ''मेरे लेखन का एकमात्र लक्ष्य आदमी की सीप में आदमियत का मोती सुरक्षित बचा ले जाने को होता है।''[5] समाज की सजग प्रहरी सूर्यबाला संस्कृति की आड़ में बढ़ते अंधविश्वास, कर्मकाण्ड के प्रति आक्रोश व्यक्त करती हैं।

सूर्यबाला की कहानियों में लोक–जीवन

सूर्यबाला की कहानी 'मटियाला तीतर' में राजस्थान के लोक–जीवन की झाँकी दिखाई देती है। मुंबई में घरेलू नौकर के रूप में काम करने वाला बालक देवा हर क्षण अपने गाँव, घर, माँ, बहन को याद करता है। उसे पता है यदि उसका पिता चीलम पीकर घर में आतंक न मचाता तो उसकी माँ इतनी दूर उसे काम पर कभी नहीं भेजती। गाँव में की जाने वाली मौज–मस्ती, पतंगबाजी, छोटी बहन से प्रेम–दुलार सारा बखान लोकभाषा में घोल कर सूर्यबाला ने क्षेत्रीय भाषा तक अपनी पहुँच का सुंदर उदाहरण दिया है। देवा को जब उसकी मालकिन रोटी बनाने कहती है तब वह कहता है– ''हमारे याँ लुगाइयाँ रोटी मणाती हैं, मरद नईं।... मेरी माँ तो भौत जल्दी मणा देती है ये डब्बल, खरी–खरी रोटियाँ। वो तो कटरे से छोटी बाई को लिये–लिये ही लकड़ियाँ भी बीन लाती है। फिर मैं जब तक बाई को खिलाता, फुसलाता हूँ वो चट से चूल्हे में लकड़ियाँ जोड़ रोटी तैयार कर देती है। हमारे ऐसी गैस नईं होती।''[6] इस कहानी में देवा के माध्यम से राजस्थान का लोक–जीवन सजीव हो उठता है।

साहित्यकार ज्ञान चतुर्वेदी को दिए साक्षात्कार में सूर्यबाला ने कहानी का विचार व तैयारी किस प्रकार करती हैं; प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया– ''जहाँ से जिस स्रोत से कहानी आती है, वह स्वयं अपने अंदर संभावनाओं की पोटली लिए आती है।... पूरी तैयारी के साथ। माहौल, भाषा, हाव–भाव, मुद्राएँ, सोच और दृष्टि भी। एक उदाहरण देती हूँ... राजस्थानी बच्चे पर लिखी अपनी कहानी 'मटियाला तीतर' का... वह बच्चा अकेला नहीं था, उसके भीतर घेरदार घाघरे ओढ़नी वाली माँ थी, गर्म रेत के टीले थे– गाँजे से लाल भभक आँखों वाला बाप था, उनकी भाषा थी, डूंगर था, शिवाला था।''[7] राजस्थान के गाँव का रहन–सहन, पहनावा, बोली, उत्सव, स्त्री–पुरुष के कार्यों का विभाजन, खान–पान आदि का चित्रण कहानी में है।

'सुनंदा छोकरी की डायरी' में बाल मजदूर सुनंदा के जीवन–संघर्ष का चित्रण है। लेखिका ने मुंबई महानगर में बोली जाने वाली लोकभाषा शैली में यह कहानी लिखा है। स्कूल जाने वाली सुनंदा पिता के अपाहिज हो जाने से माँ का हाथ बटाने के लिए घरेलू काम पर जाने लगी– ''हिरवा फाटक वाली बाई कितना मस्त रे! एकदम शिरी देवी सरीखी। मैं काम फटाफट करती तो बोली– गुड गल्ल!... मैं बोली– मइ शाला जाती थी न बाई, तो मेरा टीचर पन मेरे कूँ गुड गल्ल – शाणी छोकरी बोलती। मालूम क्यों? मई पाठ मस्त याद करती। उधर मैं सुलेख खूप साफ लिखती, इधर मैं भाण्डीपन साफ घसती न ?...''[8] लेकिन खुशमिजाज सुनंदा को माँ की मृत्यु और पिता के जेल जाने से काम से निकाल दिया गया इसलिए दो छोटे भाई–बहनों का भार वहन करने के लिए वह अपने पूर्व स्कूल में झाड़ू लगाने लगी और दोनों को कूड़ा इकट्ठा करने के लिए बोरा पकड़ा दिया। महानगर की बस्ती में रहने वालों का यही जीवन है।

'सिंड्रेला का स्वप्न' कहानी भी मुंबई की घरेलू बाल–मजदूर की व्यथा है। इसमें भी मुंबइया भाषा का प्रयोग दृष्टव्य है। भोले–भाले लोग सभ्य समाज के स्वार्थी लोगों से किस प्रकार छले जाते हैं, यह भी लेखिका ने चित्रित किया है। सूर्यबाला के लेखन में रामदरश मिश्र का कथन है– ''सूर्यबाला की कहानियाँ पढ़ता रहता हूँ। वे मुझे प्रिय लगती हैं। उनकी कहानियों में वैविध्यपूर्ण यथार्थ तथा भाषा की जीवंतता का विशेष आकर्षण है।''[9] लोकभाषा की कुशल चितेरी हैं।

'दूज का टिका' कहानी में रचनाकार ने पर्व, रीति–रिवाज, संस्कारों को चित्रित करते हुए आधुनिकीकरण के कारण इनकी उपेक्षा को भी रेखांकित किया है। भाईदूज का टीका करने बुआ के घर आई किरन उत्साहित है– ''चौक मांडना, रोली–अक्षत, दही, सुपारी और तश्तरी भर मिठाई...। पाटे पर रतन को बिठाकर उसके माथे पर रोली–अक्षत चिपकाया तो कंठ और आँखों में एक साथ इतना कुछ उमड़ आया कि.... पर्व में प्राण–प्रतिष्ठा हो चुकी है।''[10] लेकिन रतन के बच्चे बिन्नी और शौनक इसे दकियानूसी सोच मानते हैं, क्योंकि मात्र माथे पर टीका कर बदले में उपहार लेना कोई पर्व नहीं बस ट्रिक है पैसे लेने के। बच्चों की ऐसी सोच दादी को व्यथित कर देती है, क्योंकि रिश्तों की मिठास ये बच्चे महसूस ही नहीं कर पाते। जीवन में टूटते मूल्य सूर्यबाला को बेचैन कर देते हैं। शिष्ट कहलाने वाले लोगों को लोक–संस्कृति से जुड़ाव रखना अब प्रतिष्ठा के खिलाफ लगने लगा है।

'सांझवाती' कहानी पुरानी पीढ़ी में संयुक्त परिवार में रहकर भी प्रेम, समर्पण, सामंजस्य द्वारा खुशहाल जीवन जीने की कला को दर्शाती है, जो आज के एकल परिवार में भी दुर्लभ है। रचनाकार ने पंजाबी परिवेश में बुजुर्ग लेकिन मस्तमौला दो जवां दिलों की मसखरी और प्रेम को अभिव्यक्त किया है। वृद्ध दम्पति बेटों के बीच बाँट लिए गए हैं, लेकिन दूर–दूर रह कर भी इनका आपसी लगाव कम नहीं हुआ है। एक–दूसरे की चिंता फिक्र लगी रहती है, लेकिन स्वार्थवश बँटवारा करने वाले एकल परिवार में भी पति–पत्नी के बीच प्रेम, समर्पण के भाव का अभाव है। तनाव भरा जीवन जीने वाली यह पीढ़ी सिर्फ मैं' को महत्व देती है। यह देख बुजुर्ग माता–पिता परेशान हैं– ''यह बीवी शौहर के बिना रोटी खा लेती है और शौहर बीवी के पलंग पे आए बिना सो लेता है।... ये एक थाली में खाते नहीं इसलिए एक–दूसरे की बात भी नहीं समझते.... ये सब इतने नासमझ क्यों हैं? या फिर नासमझ हम थे – जाहिल जपट्ट, गँवार... काँसे की थाली परोस, झपकी आँखों अपने शौहर के आने का इंतजार करते थे।''[11] इनका तर्क है कि यदि बाहरी दुनिया में काम करके इन्हें खुशी मिलती है तो यह तो हमें बच्चों को कलेजे से लगाकर और

पति को खाना परोस कर मिल जाती थी। अपनी खुशी से बढ़कर परिवार की खुशी से खुश होते थे। जीवन में मूल्यों की समझ उनमें लौट आए इसकी प्रार्थना करते हैं। आधुनिकता की अंधी रेस में दौड़ते वर्ग के प्रति सूर्यबाला चिंतित है।

'वे जरी के फूल' कहानी में सूर्यबाला ने विवाह तिथि के पूर्व ही घर में होने वाले सांस्कृतिक आयोजन का उल्लेख किया है। महिलाओं की भीड़ उनका साज–शृंगार, हंसी–ठिठोली, रिश्तेदारी में आत्मीय सम्बोधन, विवाह–गीत, नृत्य का जीवंत चित्र उकेरा है। पहले शादी के जोड़े घर पर ही तैयार किए जाते थे, जिसकी आत्मीय अनुभूति जीवन–पर्यंत बनी रहती थी। महिलाएँ मिलकर ढोल–मजीरे की थाप देकर सुहाग–गीत गाती हैं:

''किसने गूँथी रे सुहाग भरी चोटी–
बाबा जो लाए हजार भरी मुहरै–
दादी ने गूँथी रे, सुहाग भरी चोटी–
अम्मा ने गूँथी रे, सुहाग भरी चोटी।''[12]

ये सारे चित्र लोक–जीवन की महक बिखेरते प्रतीत होते हैं।

'दादी और रिमोट' कहानी समाज में पसरती संवेदनहीनता को अभिव्यक्त करती हैं। ...दादी गाँव से शहर आती है और टी.वी के चक्कर में फँस जाती है। यह चक्कर कुछ ऐसा चला कि टेलीविज़न पर मारधाड़, गोला–बारूद से डर कर बेहोश हो जाने वाली दादी, सिर्फ धार्मिक सीरियल देखने वाली दादी विकास की प्रक्रिया में कुछ यूँ बढ़ी कि अब उन के लिए हकीकत में हुई लोमहर्षक घटना कोई फर्क नहीं डाल पाता। दो–तीन मौतें अब उन्हें नहीं चौंका पाती, टेलीविजन पर तो रोज उतने ही मरते हैं। उन्हें घबराने के लिए अब मौतों का एक बड़ा आँकड़ा चाहिए।''[13] गाँव की भोली–भाली दादी भी शहर आकर बदल चुकी है। जीवन–मूल्यों में ये बदलाव समाज के लिए चिंता का विषय है।

'पड़ाव' कहानी लोक–जीवन में व्याप्त आत्मीयता के भाव को उजागर करती है। इसके साथ ही शहरी लोगों के स्वार्थीपन को भी रेखांकित करती है। गाँव में रहने वाले वृद्ध, निःसंतान ताऊ–ताई आत्मविभोर हो उठते हैं, जब उनके घर चचेरा भतीजा अपनी पत्नी और नन्हीं बच्ची के साथ तीन–चार दिनों के लिए आता है। उन अस्वस्थ शरीर और अशक्त हड्डियों में जान आ जाती है। अर्थाभाव में भी ज्यादा–से–ज्यादा खातिरदारी कर लेने की ख्वाहिश रहती है– ''ठहरो, कचरी तले देती हूँ। हलुआ न बना दूँ ? आटे का ही सही। थोड़ा वनस्पति तो होगा ही, देखती हूँ, इतने दिनों पर आए हैं सब–आजकल कौन इतना ख्याल करता है बूढ़े–बूढ़ियों का!''[14] लेकिन भतीजा सरकारी काम के बहाने परिवार समेत पास का शहर घूमने आया है। ताऊ–ताई की याद उसे स्वार्थवश आई है, क्योंकि उनके पास रूकने से मुफ्त का खाना और रहना हो जाएगा और बच्ची के लिए भरोसेमंद आया मिल जाएगी। इन बातों से अनजान वे वृद्ध बच्ची के मुख से दादा–दादी सुनकर निहाल हो जाते हैं। सूर्यबाला आस्थावान हैं, क्योंकि संसार में निःस्वार्थ प्रेम करने वालों की भी कमी नहीं है।

'राख' कहानी लोक–जीवन में धार्मिक भावना के महत्व को उजागर करती है। बड़ी–से–बड़ी विपत्ति में भी ईश्वर के प्रति आस्था और मंदिर के बाबाजी के आशीर्वाद से सुकून प्राप्त हो जाता है– ''...सब भगवान पर छोड़ दो। समय आपसे आप निर्णय ले लेगा और अम्मा, नानी पूर्ण तृप्त–शांत भाव से उठ जातीं। भीषण–से–भीषण अकाल, संकट, हारी–बीमारी, दुःखद–अवसान तक के क्षण में यही होता। नानी जब बहुत विक्षिप्त हो उठतीं तो हनुमानगढ़ी बाबाजी की चौकी पर मत्था टेकने पहुँच जातीं और बाबाजी जाने क्या दो–एक शब्द ही बोलते कि स्थिर–शांत हो लौट आतीं, सारा उद्वेग, सारी विक्षिप्तता वहीं छोड़कर।''[15] जीवन के अमूल्य धरोहर के रूप में बाबाजी की दी हुई पवित्र भभूती सहेज कर रखा जाता और संकट की घड़ी में इसी का सहारा होता, लेकिन समय के साथ धार्मिक स्थल का परिवेश भी बदल गया है। मंदिर के पंडित भी ईश्वर भक्ति की बजाए दान–दक्षिणा पर नजर जमाए रखते हैं। मंदिर के सम्पत्ति का विवाद, राजनीतिक हस्तक्षेप आदि से पवित्र भावना दूषित होने लगी

है और भभूति अब मात्र राख बन कर रह गई है। रचनाकार का यह चिंतन निराधार नहीं है,ऐसी खबरें आती रहती हैं जहाँ धर्म के नाम पर अनैतिक कार्य हो रहे हैं और भक्तों के साथ विश्वासघात हो रहा है।

धार्मिक पर्व से परिचय कराती 'उत्सव' कहानी में दीपावली में लक्ष्मी पूजन की विधि, महत्व, तैयारी, सजावट आदि का वर्णन लेखिका ने किया है।

निष्कर्ष

अंचल विशेष की जीवन–शैली संस्कृति कहलाती है। सूर्यबाला की कहानियों में लोक–जीवन सजीव हो उठा है। लोकभाषा की मिठास, परिवेश का चित्रांकन कहानी में स्वाभाविकता उत्पन्न करती है। संवेदनहीन होते समाज को बदलने की छटपटाहट उनकी कलम बयां करती है। अपनी संवेदना से पाठक को जोड़ने वाली सूर्यबाला जीवन में मूल्यों को सहेजना चाहती है। मूल्यवान समाज में ही संस्कृति की रक्षा हो सकती है।

संदर्भ सूची

1. त्रिपाठी, शशिकला, *साहित्य की वैचारिकी,* दिल्ली, मेधा बुक्स, प्रथम संस्करण, 2006, पृ. 22.
2. निरगुणे, वसन्त. *लोक संस्कृति.* भोपाल, म.प्र. हिंन्दी ग्रंथ अकादमी, संस्करण 2005, पृ. 23.
3. शर्मा, निरूपमा. *छत्तीसगढ़ का ददरिया.* रायपुर, छत्तीसगढ़ महिला साहित्य कला एवं विकास परिषद, प्रथम संस्करण 2010, पृ. 86.
4. अमिताभ, वेदप्रकाश (संपा.). *शब्द–शब्द मानुशगंध.* दिल्ली, ज्ञानगंगा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. 74.
5. अमिताभ, वेदप्रकाश (संपा.). *शब्द–शब्द मानुशगंध.* दिल्ली, ज्ञानगंगा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. 21.
6. सूर्यबाला. *पाँच लंबी कहानियाँ.* नई दिल्ली, ग्रंथ अकादमी, संस्करण 2011, पृ. 90.
7. साक्षात्कार. रचनाकार सूर्यबाला से ज्ञान चतुर्वेदी की बातचीत. जनवरी 2007, पृ. 21.
8. सूर्यबाला, *साँझवाती.* दिल्ली, सत्या प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2013, पृ. 66.
9. अमिताभ, वेदप्रकाश (संपा.). *शब्द–शब्द मानुशगंध.* दिल्ली, ज्ञानगंगा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. 87.
10. सूर्यबाला, *गृहप्रवेश.* नई दिल्ली, ग्रंथ अकादमी, संस्करण 2008, पृ. 127.
11. सूर्यबाला, *साँझवाती.* दिल्ली, सत्या प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2013, पृ. 93.
12. सूर्यबाला. *मुंडेर पर.* नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण, 1990, पृ. 43.
13. चौधरी, उमाशंकर. यहाँ एक धड़कता हुआ दिल था, कहाँ है अब?. समकालीन भारतीय साहित्य, दिल्लीरू साहित्य अकादमी, गिरधर राठी (संपा.), मई–जून 2004, पृ. 245.
14. सूर्यबाला. *थाली भर चाँद.* दिल्ली, सत्साहित्य प्रकाशन, संस्करण 2011, पृ. 77.
15. सूर्यबाला. *थाली भर चाँद.* दिल्ली, सत्साहित्य प्रकाशन, संस्करण 2011, पृ. 109.

****